बाल
चित्रमय
चैतन्यलीला

॥ श्रीहरिः ॥

बालचित्रमय चैतन्यलीला

मुद्रक तथा प्रकाशक—
मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २०११ से २०२१ तक ६५,०००
सं० २०२३ आठवाँ संस्करण १०,०००
कुल ७५,०००

मूल्य चालीस पैसे

पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

॥ श्रीहरिः ॥

पोथीकी जानकारी

महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव एक महान् युगपुरुष थे। उन्होंने और उनके साथी तथा शिष्य-प्रशिष्योंने अपने पवित्र वैष्णव आचरण और साहित्यके द्वारा जगत्‌को जो अमूल्य निधि दी है उसकी कहीं तुलना नहीं है। बंगालमें तो श्रीचैतन्य भगवान्‌के साक्षात् अवतार माने जाते हैं और इनके बंग-भाषाके पद्योंमें लिखित चरित्र 'श्रीचैतन्य-चरितामृत' की श्रीमद्भागवत तथा रामायणकी भाँति कथा तथा पाठ होता है। इनके जीवनका प्रत्येक प्रसङ्ग प्रभु-प्रेम तथा त्याग-वैराग्यसे भरा है। हमारे छोटे-छोटे बालक इन महापुरुषकी जीवन-लीलाओंको जान लें और बोल-चालकी भाषामें लीलाकी तुकबंदियाँ याद कर लें तो उनको बड़ा आनन्द प्राप्त हो सकता है और उनके जीवन-निर्माणमें बड़ी शुभ प्रेरणा मिल सकती है। इसी उद्देश्यसे यह चित्रोंमें श्रीचैतन्यका चरित्र प्रकाशित किया जा रहा है। प्रत्येक चित्रके नीचे उसका भाव तुकबंदीमें लिख दिया गया है। साथ ही विशेष जानकारीके लिये उनका संक्षिप्त जीवन-चरित्र भी चित्रोंके सामने दे दिया गया है। इसमें ४८ सादे और एक सुन्दर रंगीन चित्र हैं। आशा है हमारे बालक इससे लाभ उठावेंगे।

निवेदक—

श्रावण कृष्ण ११। २०११ वि०

हनुमानप्रसाद पोद्दार

श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभु

श्रीहरिः

बालचित्रमय चैतन्यलीला

बंगालके नवद्वीप नगरमें पं० श्रीजगन्नाथ मिश्रकी पत्नी श्रीशचीदेवीकी गोदमें उनके पुत्ररूपसे गौड़ीय भक्तोंके परमधन श्रीचैतन्यदेव सं० १५४२ वि० फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमाको होलिकाके दिन प्रकट हुए।

बालक इतना सुन्दर और इतना गोरा था कि उसका नाम ही लोगोंने गौराङ्ग रख लिया। वैसे नामकरणके समय इनका नाम विश्वम्भर रखा गया था; किंतु माताने प्यारका नाम निमाई रखा था और यह निमाई नाम ही लोकमें अधिक प्रसिद्ध हुआ।

श्रीनिमाईके जन्मके दिन चन्द्रग्रहण था। ग्रहण-मोक्ष होनेपर लोग गङ्गास्नान करके 'राम, कृष्ण, हरि' आदि भगवान्‌का पवित्र नाम ले रहे थे। उसी समय निमाई मानो यह सूचित करते प्रकट हुए कि उनका जन्म भगवन्नामका प्रचार करनेके लिये ही हुआ है।

शिशु-अवस्थामें जब निमाई पलनेमें रोने लगते थे तो आस-पासकी स्त्रियाँ उनके पलनेके पास बैठकर 'हरि बोल, हरि बोल' कहकर कीर्तन करने लगती थीं। इससे निमाई रोना भूल जाते थे और प्रसन्नतासे किलकने लगते थे।

नामकरण-संस्कारके दिन यह जाननेके लिये कि बालककी रुचि किस ओर होगी, अन्न, वस्त्र, हथियार, रुपये और पुस्तकें आदि सजाकर रख दी गयीं। निमाईने सरककर उनमेंसे श्रीमद्-भागवतकी पुस्तकपर ही हाथ रखकर अपनी रुचि प्रकट कर दी।

तनिक बड़े होते ही निमाई खूब चञ्चल हो गये। उन्हें सम्हालना माताको कठिन होता था। एक दिन तो वे एक गुड़मुड़ी मारे सर्पके ऊपर ही जाकर बैठ गये। सर्पने भी फण उठाकर आनन्दसे झूमना प्रारम्भ किया। माता और उनके बड़े भाई यह देखकर डर गये कि निमाई सर्पके सिरपर हाथ रखकर हँस रहे हैं। पीछे निमाईके हटते ही सर्प वहाँसे चला गया।
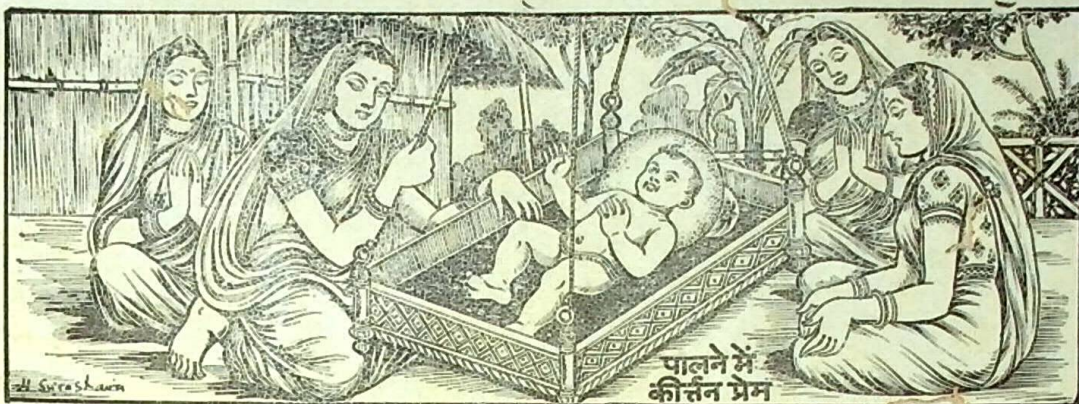
युक्ति मिली, सबके मन भाई। जब रोते हों बाल निमाई॥
हरि हरि हरि हरि गाय सुनावें। रोना त्याग गौर सुख पावें॥

नामकरणका सुन्दर अवसर। धरे शस्त्र, धन, वस्त्र मनोहर॥
इनकी दृष्टि कहीं क्यों जाती। धरी भागवत मनको भाती॥

सर्प भयंकर फण फैलाये। चढ़े गौर बैठे मन भाये॥
माता-भाई अति घबराये। पार कौन महिमाका पाये?

कहते विश्वरूप सकुचाकर। 'यह छोटा भाई है गुरुवर॥'
हैं अद्वैताचार्य विभोर। मंद मंद मुसकाते गौर॥
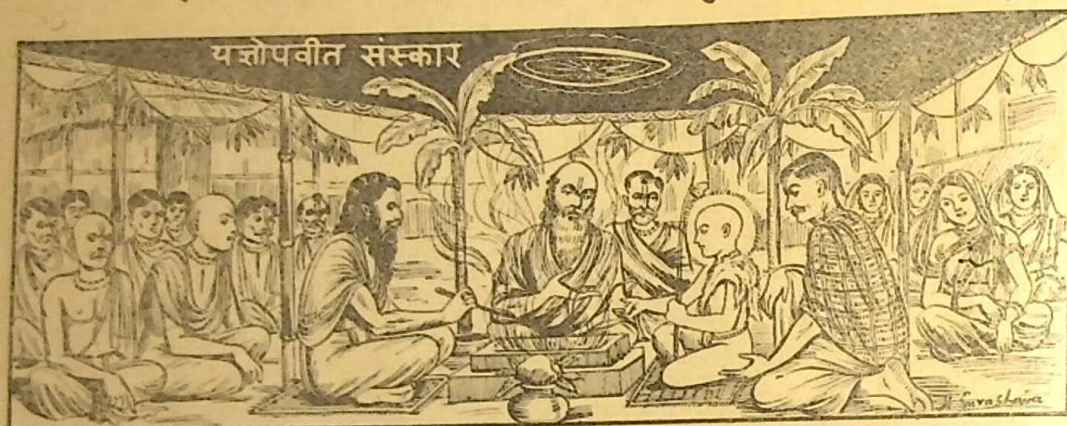
शुभ यज्ञोपवीत है आज। अद्भुत सजे निमाई साज॥
धरे ब्रह्मचारीका वेश। लेते गायत्री-उपदेश॥

'इतनेसे दुःख तुम्हें हो रहा।' दिया गौरने ग्रन्थको बहा॥
अहो! मित्रका यह अनुराग। धन्य धन्य यह अनुपम त्याग॥

निमाईके बड़े भाई विश्वरूपजी श्रीअद्वैताचार्यके यहाँ पढ़ते थे। माताकी आज्ञासे निमाई अपने बड़े भाईको भोजन करनेके लिये बुलाने गये। अद्वैताचार्यने पहली बार निमाईको देखा और उनकी शोभा वे एकटक देखते ही रह गये।

श्रीजगन्नाथ मिश्रजीने यथासमय अपने पुत्र निमाईका विधिपूर्वक यज्ञोपवीत-संस्कार कराया। यज्ञोपवीतके दिन ही इनका नाम 'गौरहरि' पड़ गया।

निमाई पढ़नेमें बहुत तेज थे। वे न्यायशास्त्रके प्रधान विद्वान् वासुदेव सार्वभौमकी पाठशालामें पढ़ते थे। रघुनाथ शिरोमणि इनके सहपाठी थे। उन्होंने एक न्यायशास्त्रका 'दीधिति' नामक ग्रन्थ लिखा था, जो आज भी प्रसिद्ध है। न्यायका एक दूसरा ग्रन्थ निमाईने भी लिखा था। एक दिन गङ्गापार होते समय रघुनाथके आग्रहपर निमाईने उन्हें अपना ग्रन्थ सुनाया। ग्रन्थको सुनकर रघुनाथके नेत्रोंमें यह सोचकर आँसू आ गये कि ऐसे उत्तम ग्रन्थके रहते मेरे ग्रन्थको कौन पूछेगा। निमाईने उनके रोनेका कारण पूछा और उनकी बात सुनकर अपना ग्रन्थ यह कहते हुए गङ्गामें बहा दिया कि—'इतनी-सी बातके लिये आप दुखी होते हैं।'

केवल सोलह वर्षकी अवस्थामें निमाईमें यह त्याग और अद्भुत प्रतिभा थी। माताके आग्रहसे ये अब अध्यापन करने लगे। माताने पं० वल्लभाचार्यजीकी पुत्री लक्ष्मीदेवीसे इनका विवाह सम्पन्न करा दिया। इनकी प्रतिभा इतनी अद्भुत थी कि नवद्वीपमें आये दिग्विजयी पण्डितको हँसी-हँसीमें ही इन्होंने पराजित कर दिया। वे दिग्विजयी पण्डित इनका गुणगान करते वहाँसे गये।

दिग्विजयीको हराकर निमाई अत्यन्त प्रसिद्ध हो गये थे। फिर भी वे पहलेके समान ही चञ्चल थे। परम भगवद्भक्त निर्धन ब्राह्मण श्रीधरको तो ये जान-बूझकर खिझाया करते थे। श्रीधर केलेके फूल, पत्ते आदि बेचने बैठता तो निमाई कुछ-न-कुछ उठा लेते और बहुत ही कम मूल्य देनेको कहकर श्रीधरको खिझाया करते। श्रीधरकी सरलता और भक्तिसे इन्हें प्रेम था। श्रीधर इनसे झगड़ता तो था, पर मनसे इनको प्रेम करता था।

उन्हीं दिनों नवद्वीपमें स्वामी ईश्वरपुरीजी पधारे। निमाईको देखते ही वे मुग्ध हो गये और निमाई भी उनके मुखसे भगवन्नाम सुनकर प्रेमविभोर हो उठे।

दिग्विजयी अति ही गरबाया। काशी-विजय प्राप्त कर आया॥
तरुण निमाईसे वह आज। हार गया पण्डित-सिरताज॥

लेकर दोने पत्ते खोल। देते नहीं निमाई मोल॥
श्रीधर पर है स्नेह अपार। उसे छेड़ते परम उदार॥

हैं दोनोंमें प्रेम अनन्य। ईश्वरपुरी निमाई धन्य॥
पुरी सु-मन्त्र दे रहे कान। गौर प्रेमविह्वल बेभान॥

केवल सोलह वर्षकी अवस्थामें निमाईमें यह त्याग और अद्भुत प्रतिभा थी। माताके आग्रहसे ये अब अध्यापन करने लगे। माताने पं० वल्लभाचार्यजीकी पुत्री लक्ष्मीदेवीसे इनका विवाह सम्पन्न करा दिया। इनकी प्रतिभा इतनी अद्भुत थी कि नवद्वीपमें आये दिग्विजयी पण्डितको हँसी-हँसीमें ही इन्होंने पराजित कर दिया। वे दिग्विजयी पण्डित इनका गुणगान करते वहाँसे गये।

दिग्विजयीको हराकर निमाई अत्यन्त प्रसिद्ध हो गये थे। फिर भी वे पहलेके समान ही चञ्चल थे। परम भगवद्भक्त निर्धन ब्राह्मण श्रीधरको तो ये जान-बूझकर खिझाया करते थे। श्रीधर केलेके फूल, पत्ते आदि बेचने बैठता तो निमाई कुछ-न-कुछ उठा लेते और बहुत ही कम मूल्य देनेको कहकर श्रीधरको खिझाया करते। श्रीधरकी सरलता और भक्तिसे इन्हें प्रेम था। श्रीधर इनसे झगड़ता तो था, पर मनसे इनको प्रेम करता था।

उन्हीं दिनों नवद्वीपमें स्वामी ईश्वरपुरीजी पधारे। निमाईको देखते ही वे मुग्ध हो गये और निमाई भी उनके मुखसे भगवन्नाम सुनकर प्रेमविभोर हो उठे।

दिग्विजयी अति ही गरबाया। काशी-विजय प्राप्त कर आया॥
तरुण निमाईसे वह आज। हार गया पण्डित-सिरताज॥

लेकर दोने पत्ते खोल। देते नहीं निमाई मोल॥
श्रीधर पर है स्नेह अपार। उसे छेड़ते परम उदार॥

हैं दोनोंमें प्रेम अनन्य। ईश्वरपुरी निमाई धन्य॥
पुरी सु-मन्त्र दे रहे कान। गौर प्रेमविह्वल बेभान॥

गये श्राद्ध हित गया निमाई। वहीं प्रेम मादकता छाई॥
लौटे, पर न मार्गका ध्यान। हरि हरि हरि कहते तज मान॥

छुटी पढ़ाई अपने-आप। छात्र देखते हैं चुपचाप॥
'कृष्ण नाम शिक्षाका सार।' कीर्तन करते गौर उदार॥

गौर यहाँ भक्तोंके संग। मग्न हुए कीर्तनके रंग॥
नृत्य कर रहे, वजते खोल। हरि बोल हरि बोल हरि हरि बोल॥

बड़े भाई विश्वरूप पहले ही विरक्त होकर घरसे चले गये थे और फिर नहीं लौटे। निमाईके पिता श्रीजगन्नाथ मिश्रका भी परलोकवास निमाईकी छोटी अवस्थामें ही हो गया। निमाई-की पहली पत्नी लक्ष्मीदेवी भी जब ये पूर्व बंगालकी यात्रामें गये; तो इनका वियोग न सह सकीं। उनके देह-त्यागसे शची माता अकेली रह गयीं। इसलिये यात्रासे लौटनेके कुछ दिनों बाद माताने आग्रह करके निमाईके दूसरे विवाहकी तैयारी की। इस बार निमाईने श्रीसनातन मिश्रकी कन्या श्रीविष्णुप्रियाजीका पाणिग्रहण किया। विवाहके कुछ दिनों बाद पितृश्राद्धके लिये इन्होंने गयाकी यात्रा की। लेकिन वहाँ विष्णुपदके दर्शन करके इनकी अद्भुत दशा हो गयी। गयामें और वहाँसे लौटते समय भी ये भगवत्प्रेममें उन्मत्त-से होकर भगवन्नामका जोर-जोरसे कीर्तन करते चलते थे।

गयासे लौटनेपर पाठशाला बंद कर देनी पड़ी, क्योंकि पढ़ाते समय ग्रन्थको भूलकर निमाई पण्डित भगवन्नामके कीर्तनमें मग्न हो जाते थे।

अब तो श्रीवास पण्डितके घर भक्तोंका समूह एकत्र होने लगा और वहाँ नित्य गौरहरि प्रेमोन्मत्त होकर कीर्तन करने लगे।

धीरे-धीरे गौरहरिके परम प्रेमी नवद्वीपमें एकत्र होने लगे। स्वामी नित्यानन्दजी, जिन्हें गौरहरि अपना बड़ा भाई मानते थे और भक्त जिन्हें 'निताई' कहते हैं, वे भी नवद्वीप आ गये। निमाईसे मिलते ही वे जैसे उनके ही हो गये। अब तो निमाई-निताई दोनों हाथ पकड़कर कीर्तन करने लगे।

श्रीगौरहरिने भगवन्नामका संदेश देकर प्रत्येक प्राणीको पवित्र करनेका कार्य श्रीनित्यानन्दजीको सौंपा। नवद्वीपको आतंकित करनेवाले जगाई और मधाई नामके दो गुंडे अधिकारियोंके पास जब नित्यानन्दजी गये तो मधाईने उन्हें हँड़िया खींचकर मारी। नित्यानन्दजीके मस्तकसे रक्त बह चला। यह समाचार पाकर गौरहरि वहाँ दौड़े आये। लेकिन नित्यानन्दजीने उन दोनों पापियों-को क्षमा करके उनका उद्धार करनेकी प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना-से प्रभुने उन्हें गले लगाया। इससे उनके पाप दूर हो गये। उसी दिनसे वे सब दुष्कर्म छोड़कर अत्यन्त नम्र भगवद्भक्त बन गये।

नवद्वीपके काजीने भी लोगोंके उभाड़नेसे कीर्तनका विरोध किया। उसे समझाने कीर्तन करते हुए गौरहरि उसके यहाँ गये। बड़ी भारी भीड़ देखकर पहले तो काजी डर गया; किंतु फिर गौरहरिने उसे समझाकर निर्भय किया। काजीने कीर्तनका विरोध करना छोड़ दिया।
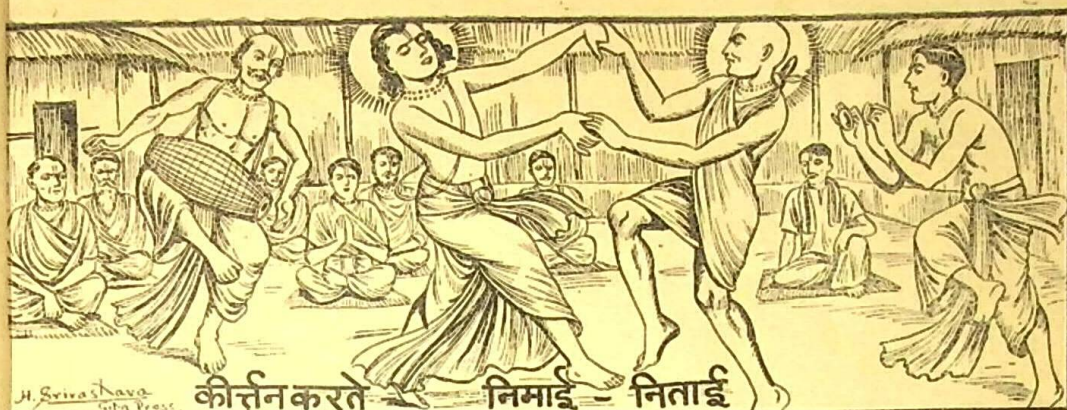
मिले आज जैसे दो भाई। नाच रहे हैं गौर-निताई॥
दोनों भक्तोंके सुखधाम। निताई-गौर, राधेश्याम॥
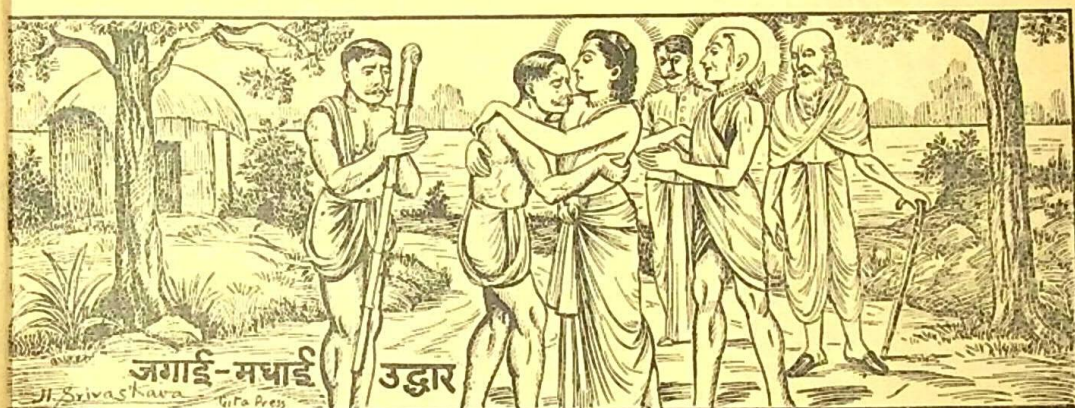
क्रूर जगाई और मधाई। किन्तु दयामय गौर-निताई॥
निपट पापियोंका उद्धार। हैं करते ये परम उदार॥
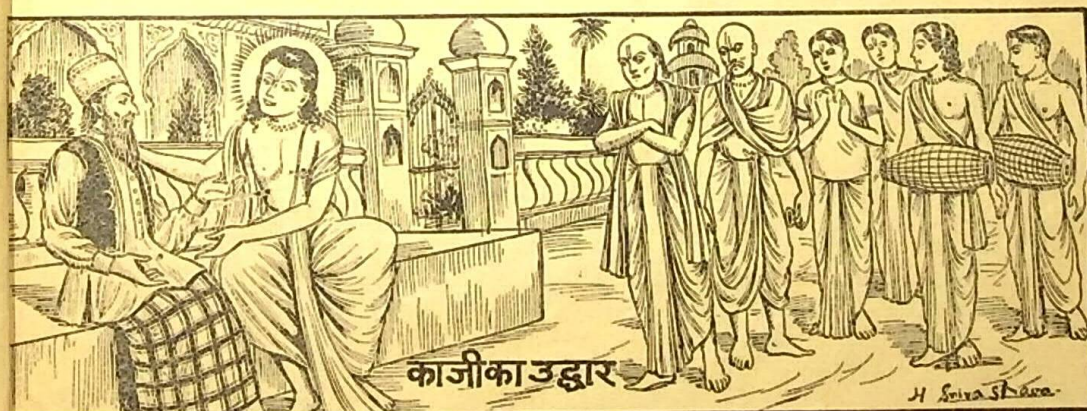
नदियाका हाकिम यह काजी। गौर इसे कहते मामाजी॥
हुआ अहो यह भी पावन मन। पाकर पुण्य निमाई-दर्शन॥

जीवोंके कल्याण निमित्त। लगा त्यागमें इनका चित्त॥
आधी रात छोड़ घरद्वार। गौर जा रहे गंगा-पार॥
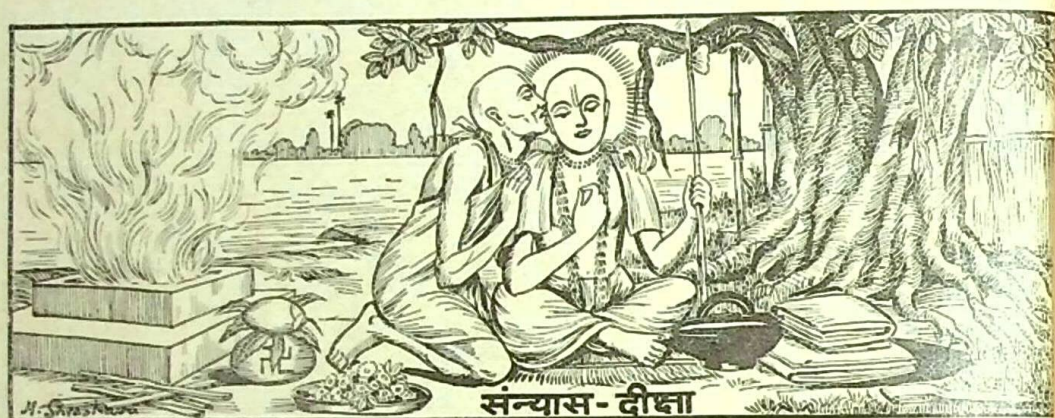
धन्य भक्तिका भाव अनन्य। पंडित हुए कृष्णचैतन्य॥
जगको त्याग सिखाने आज। दीक्षित संन्यासीके साज॥
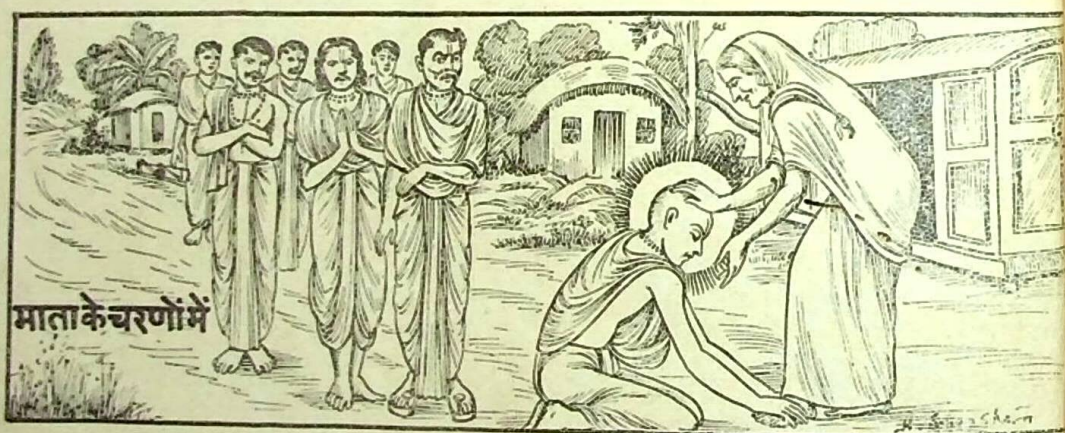
पुत्र प्रणत होकर संन्यासी। माताकी निःसीम उदासी॥
धन्य धन्य यह पावन माता। जिसने दिया जगतको त्राता॥

जीवोंका उद्धार त्यागका महान् आदर्श सामने रखे बिना नहीं हो सकता, यह बात गौरहरिके मनमें बार-बार आती थी। अन्तमें संन्यास लेनेके विचारसे एक रात माता और पत्नीको सोती हुई छोड़कर ये घरसे निकल पड़े। रात्रिमें तैरकर ही इन्होंने गङ्गाको पार किया।

गङ्गापार कटवा ग्राममें जाकर इन्होंने श्रीस्वामी केशव-भारतीजीसे आग्रह करके संन्यासकी दीक्षा ली। इनका संन्यास-का नाम स्वामी श्रीकृष्णचैतन्य भारती पड़ा। इसीसे भक्तगण इन्हें 'चैतन्य' या चैतन्यमहाप्रभु कहते हैं।

संन्यास लेकर भगवत्प्रेममें उन्मत्त घूमते हुए महाप्रभु शान्तिपुरमें श्रीअद्वैताचार्यके यहाँ आये। नवद्वीपसे श्रीशची माता भी शान्तिपुर आयीं। यहींपर संन्यासीवेषमें प्रभुने माताके चरणों-में प्रणाम किया। परम धर्मज्ञा माताने इनसे फिर घर चलनेको एक बार भी नहीं कहा। माताने केवल इतना कहा—'तुम अब दूर न जाकर श्रीजगन्नाथपुरीमें रहो। जिससे पुरी आते-जाते भक्तोंसे मुझे तुम्हारा समाचार तो मिलता रहे।

महाप्रभुने माताकी आज्ञा स्वीकार कर ली। ये बंगालसे पुरीके लिये चल पड़े। मार्गमें ये दौड़ते तथा कीर्तन करते हुए चलते थे। जलेश्वर नामक शिवमन्दिरमें पहुँचकर भगवान् शंकर-का पावन नाम लेकर उद्दाम कीर्तन करने लगे। महाप्रभुका दिव्य भाव देखकर सभी दर्शक और पुजारी चकित रह गये।

पुरी पहुँचनेपर तो श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरका कलश देखते ही महाप्रभु प्रेमोन्मत्त हो गये थे। ये दौड़ते हुए गये और धड़ाम-से श्रीजगन्नाथजीके सामने गिरकर मूर्छित हो गये। घबराकर पुजारियोंने उठाना चाहा। वहाँ आचार्य वासुदेव सार्वभौम इन्हें अपने यहाँ ले गये।

पुरीमें कुछ काल रहकर महाप्रभुने दक्षिण भारतकी यात्रा की। इस यात्रामें एक स्थानपर इन्होंने वासुदेव नामक कुष्ठके रोगीको भगवन्नाम लेते देखा। उस कुष्ठीके मना करनेपर भी महाप्रभुने उसे पकड़कर हृदयसे लगा लिया। महाप्रभुका स्पर्श होते ही उसका कुष्ठ रोग दूर हो गया। उसका शरीर पूर्ण स्वस्थ बन गया।

हर-हरि दोनों सदा अभिन्न। मूर्ख इन्हें जो माने भिन्न॥
शिव-मन्दिरमें भाव विभोर। नृत्य कर रहे हैं श्रीगौर॥

करके जगन्नाथका दर्शन। भूल गया अपना सब तन-मन॥
मूर्छित गिरे गौर तत्काल। चकित हुए सब लख यह हाल॥
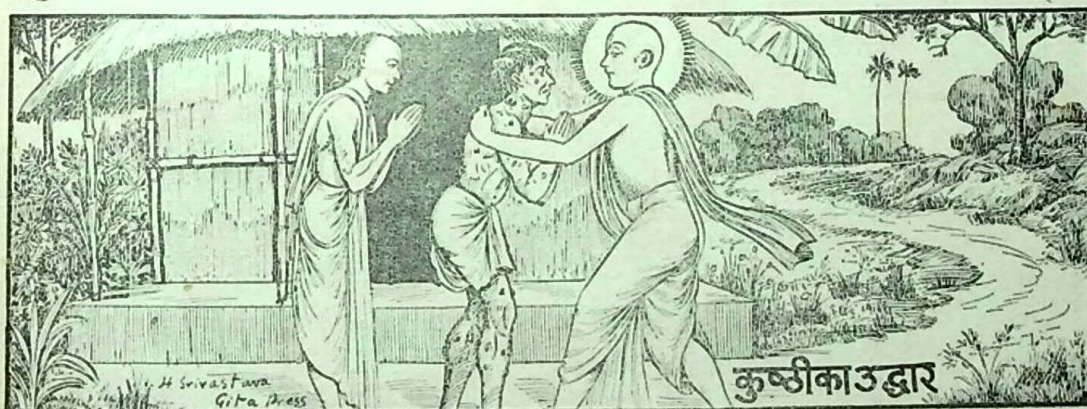
वासुदेव कोढ़ी भी धन्य। हरिमें इसकी भक्ति अनन्य॥
प्रभुने भुजभर हृदय लगाया। स्वस्थ हो गयी निर्मल काया॥
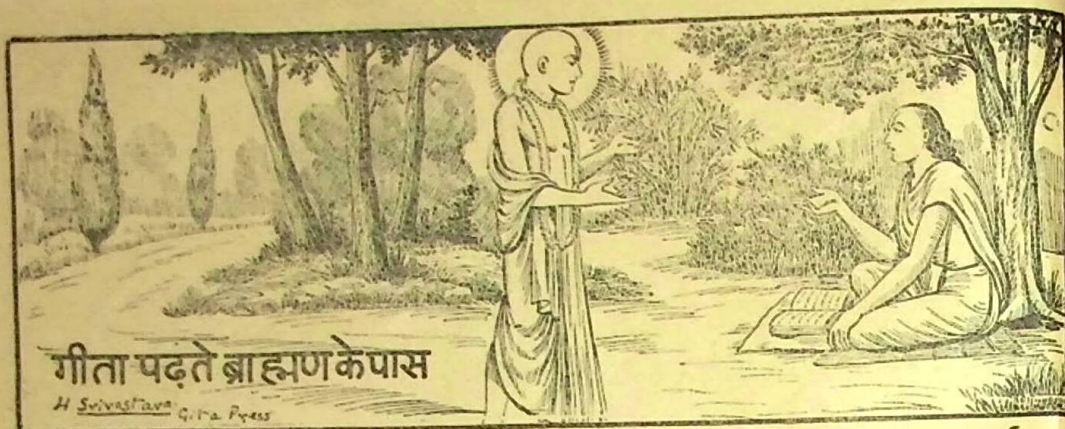
गीता पढ़ते ब्राह्मणके पास

विप्र न है गीता पढ़ पाता। किन्तु चित्त श्रीकृष्ण समाता॥
गौर कह रहे—'धन्य सुजान। तुम सच्चे गीता-विद्वान॥'
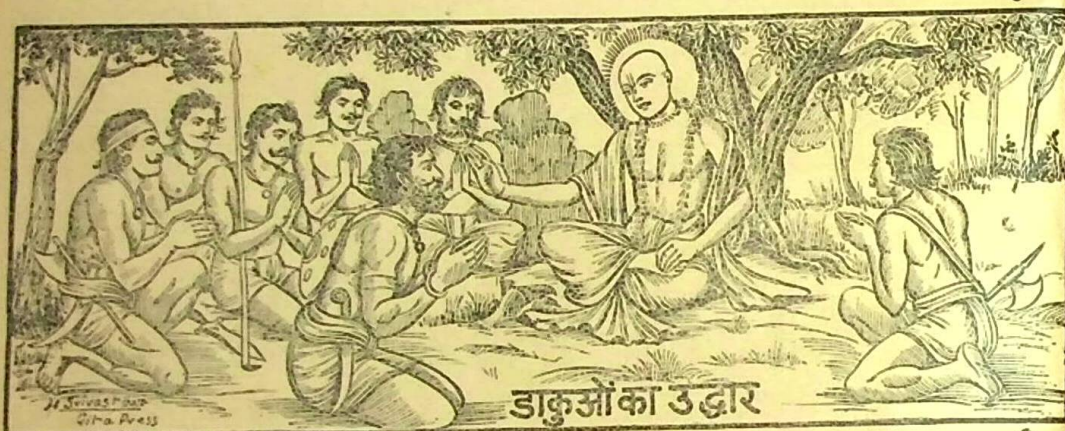
डाकुओंका उद्धार

सुन कीर्तन नौरोजी आया। दलके सँग उसको अपनाया॥
सब डाकू हो गये पवित्र। अद्भुत हैं चैतन्य-चरित्र॥
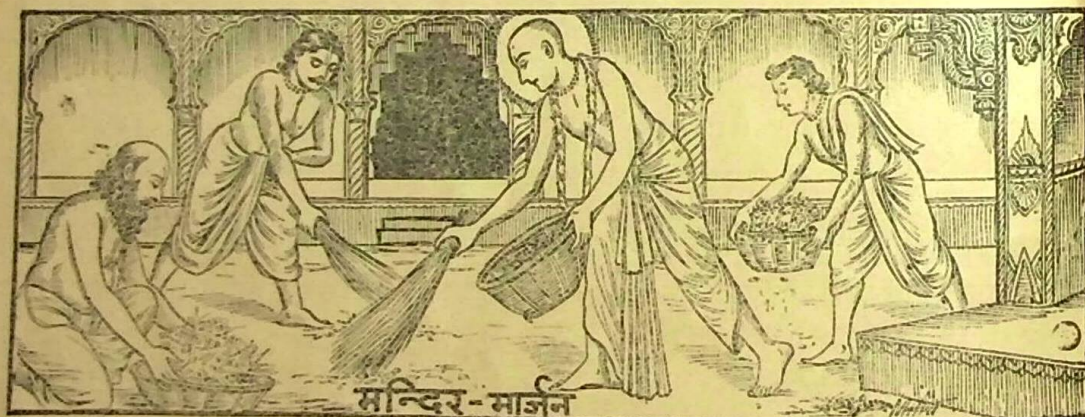
मन्दिर-मार्जन

लिये बुहारी अपने हाथ। हरि-भक्तोंको लेकर साथ॥
हरि-सेवाका मार्ग दिखाते। हरि-मन्दिर हैं स्वच्छ बनाते॥

एक ब्राह्मण गीताका पाठ अशुद्ध कर रहा था; पर पाठ करते-करते रोता जा रहा था। पूछनेपर उसने कहा—'मैं संस्कृत नहीं जानता, लेकिन पाठ करते समय रथपर बैठे अर्जुनको उपदेश करते भगवान् श्रीकृष्ण मेरी आँखोंके सामने रहते हैं।' महाप्रभुने उस ब्राह्मणकी प्रशंसा की और कहा—'गीताका ठीक पाठ करना तो तुम्हीं जानते हो।'

दक्षिण-यात्रामें ही एक वनमें नौरोजी डाकू अपने साथियों-के साथ मिला। महाप्रभुका अद्भुत रूप देखकर ही वह प्रभावित हो गया और उनके दिव्य उपदेशोंको सुनकर तो भगवद्भक्त ही बन गया। उसने उसी दिनसे डाका डालना छोड़ दिया।

दक्षिण-यात्रा पूरी करके महाप्रभु फिर श्रीजगन्नाथपुरी लौट आये। रथयात्राके समय गौड़ीय भक्तोंके साथ इन्होंने स्वयं मन्दिरकी सफाई की। मन्दिरको झाड़-बुहारकर और धोकर स्वच्छ किया।

श्रीजगन्नाथजीकी रथयात्राके समय महाप्रभुने गौड़ीय भक्तों-की कई कीर्तन-मण्डलियाँ बनायीं। ये स्वयं श्रीजगन्नाथजीके रथके आगे-आगे कीर्तन करते और नृत्य करते चलते थे।

श्रीजगन्नाथजीका बड़ा भारी रथ चलते-चलते रुक गया। सहस्रों लोग रस्से पकड़कर रथको खींच रहे थे और बहुत-से लोग उसे ठेल रहे थे; किंतु रथ टस-से-मस नहीं होता था। लेकिन जब महाप्रभुने जाकर रथको ठेलना प्रारम्भ किया तो वह बड़े वेगसे चलने लगा।

उड़ीसा-नरेश महाराज प्रतापरुद्र बहुत दिनोंसे महाप्रभुका दर्शन करना चाहते थे; किंतु महाप्रभुको राजासे मिलना स्वीकार नहीं था। अन्तमें लोगोंने महाराज प्रतापरुद्रको युक्ति बतायी। रथयात्राके समय जब महाप्रभु एक स्थानपर विश्राम कर रहे थे, राजा प्रतापरुद्र साधारण वेशमें श्रीमद्भागवतके श्लोक पढ़ते हुए महाप्रभुके पास गये। श्रीमद्भागवतके श्लोक सुनते ही महाप्रभु प्रेमविभोर हो गये। उन्होंने उसी भावावेशमें प्रतापरुद्रको गले लगा लिया।
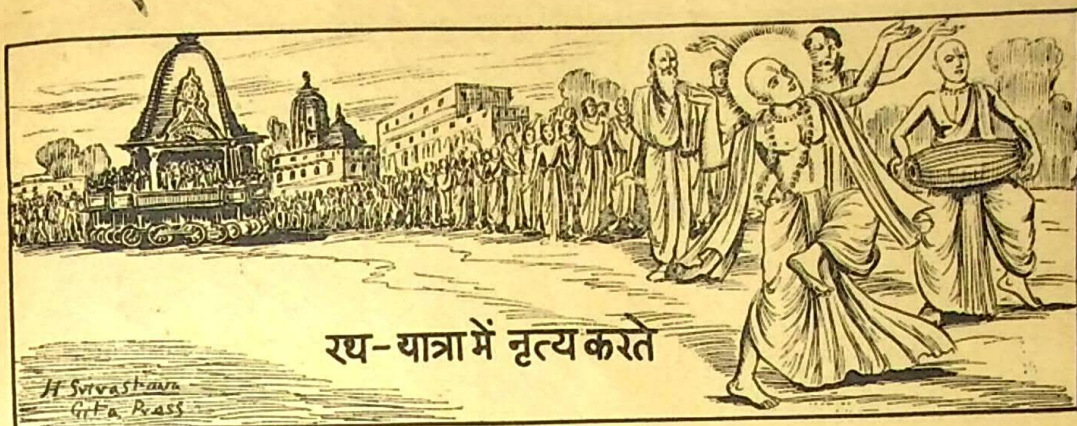
रथ-यात्रा में नृत्य करते

रथ-यात्रा होती प्रति वर्ष। किन्तु आज है अद्भुत हर्ष॥
लिये भक्तमंडलियाँ संग। कीर्तन करते श्रीगौराङ्ग॥

रथ को ठेलते

ठेल ठेल सब मानी हार। चला नहीं रथ डग भी चार॥
पर अब जाता रथ गति संग। स्वयं ठेलते हैं गौराङ्ग॥
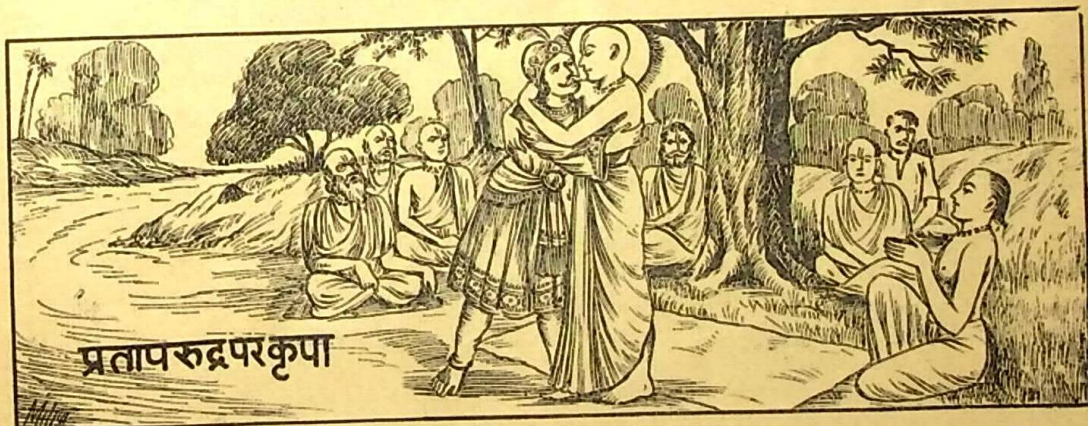
प्रतापरुद्रपरकृपा

धन्य प्रतापरुद्र हैं आज। सफल हो गया साज-समाज॥
श्रीमहाप्रभुने हृदय लगाया। राजाने जीवन फल पाया॥
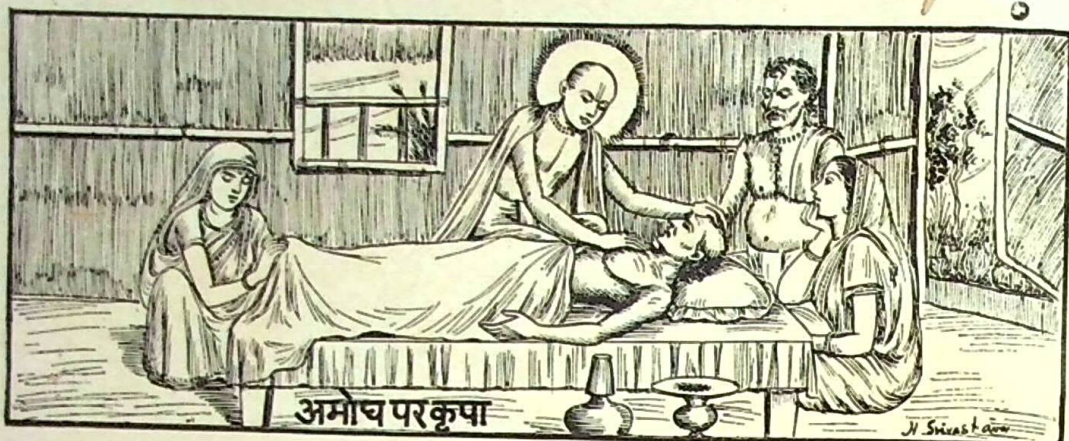
सार्वभौमका यह जामाता। था निन्दामें ही सुख पाता॥
हैजा हुआ गयी सब शक्ति। गौर स्वस्थ कर, देते भक्ति॥
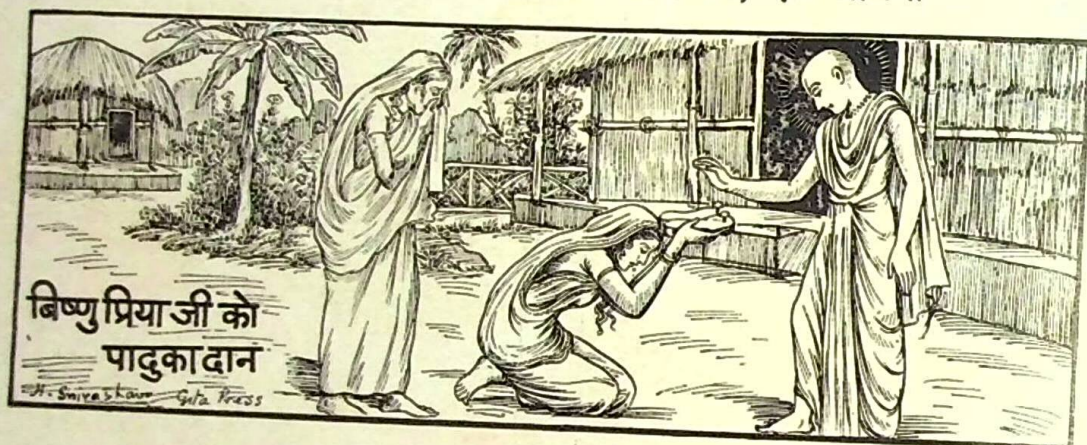
आये नदिया अपने द्वार। माताका है शोक अपार॥
पाकर विष्णुप्रिया आधार। धरी शीश पादुका सँभार॥

वाघ सिंह मृग रीछ सर्प सब। त्याग क्रूरता मित्र बने अब॥
मग्न प्रेमके सात्त्विक भाव। इनपर भी चैतन्य-प्रभाव॥

सार्वभौम भट्टाचार्यका जामाता अमोघ बड़ा ही परनिन्दक था। वह महाप्रभुकी भी निन्दा करता था। महाप्रभु जब सार्वभौम-के घर भिक्षा कर रहे थे, उसने इनके भोजनपर भी व्यंग किया। संयोगवश उसी दिन उसे हैजा हो गया। उसकी दशा इतनी बुरी हो गयी कि उसे देहकी भी सुधि नहीं रही। समाचार पाकर महाप्रभु वहाँ गये। महाप्रभुकी कृपासे अमोघका रोग तो दूर हुआ ही, उसका स्वभाव भी बदल गया। उसी दिनसे वह हरिभक्त बन गया।

पुरीसे वृन्दावन जानेके विचारसे प्रभु गौड़ पधारे। इस यात्रामें ये नवद्वीप भी गये। श्रीविष्णुप्रियाजीने जब इनके चरणोंमें प्रणाम किया तो प्रभुने उन्हें अपनी चरण-पादुका दे दी। विष्णुप्रियाजीने वह पादुका मस्तकपर रख ली। वे बराबर उन पादुकाओंका ही पूजन करती रहीं।

उस बार तो महाप्रभु बंगालसे ही लौट आये। दूसरी बार पुरीसे वे जंगलके मार्गसे केवल एक ब्राह्मणको साथ लेकर वृन्दावनको चल पड़े। मार्गमें हिंसक पशु भी महाप्रभुके प्रभावसे परस्परकी शत्रुता छोड़कर उनके पास आ जाते थे और नृत्य करके कीर्तन करनेकी भाँति शब्द करने लगते थे। महाप्रभु उनको भी स्नेहसे पुचकारते थे।

व्रजमें पहुँचकर तो महाप्रभु प्रेमोन्मत्त ही हो गये। मथुरा-की गलियों और सड़कोंपर उन्हें उद्दाम कीर्तन करते देखकर सभी नर-नारी चकित रह जाते थे।

एक बार प्रेमावेशमें इन्हें मूर्च्छित देखकर पठान सरदार बिजली-खाँको भ्रम हुआ कि साथियोंने इन्हें विष दिया होगा। उसने अपने सिपाहियोंके द्वारा महाप्रभुके साथियोंको पकड़वा लिया। लेकिन होशमें आनेपर महाप्रभुने उसे समझाया। बिजलीखाँ और उसके पठान साथी महाप्रभुका स्पर्श पाकर तथा इनकी वाणी सुनकर भगवत्प्रेममें उन्मत्त हो गये और 'हरि हरि' कहकर कीर्तन करते हुए नृत्य करने लगे।

व्रजसे प्रयाग लौटनेपर श्रीवल्लभाचार्यजीसे महाप्रभुकी भेंट हुई। आचार्यके आग्रहसे महाप्रभु नौकामें बैठकर यमुनापार अड़ैलमें आचार्यके निवास-स्थानपर जा रहे थे। यमुनाजीका नीला जल देखकर श्रीकृष्ण-प्रेममें मग्न महाप्रभु यमुनाजीमें कूद पड़े। बड़ी कठिनाईसे आचार्यने इन्हें फिर नौकापर चढ़ाया।
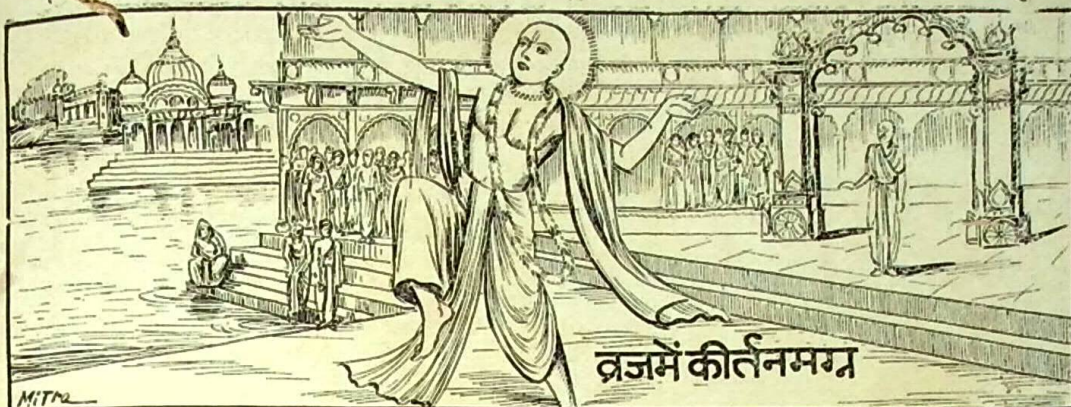
भूल देह सुधि ले हरिनाम। नृत्य कर रहे मथुरा धाम॥
नगर निवासी देख चकित हैं। गौर भक्तिमें मग्न मुदित हैं॥

पीर, सिपाही, बिजली खान। हुए सभी वैष्णव पाठान॥
मिला गौर हरि प्रेम महान। कीर्तन करते परम सुजान॥
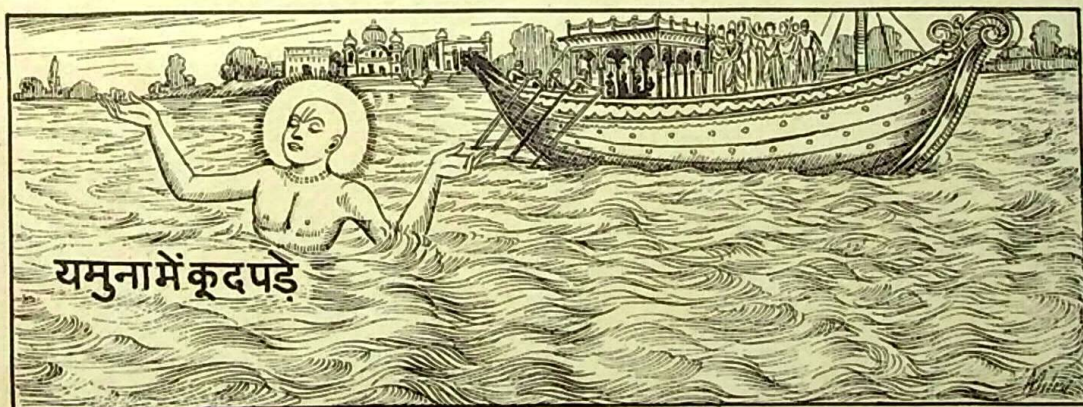
यमुनाका जल सुन्दर श्याम। श्याम अंग-छवि परम ललाम॥
देख भक्तिमें हुए विभोर। कूद पड़े धारामें गौर॥
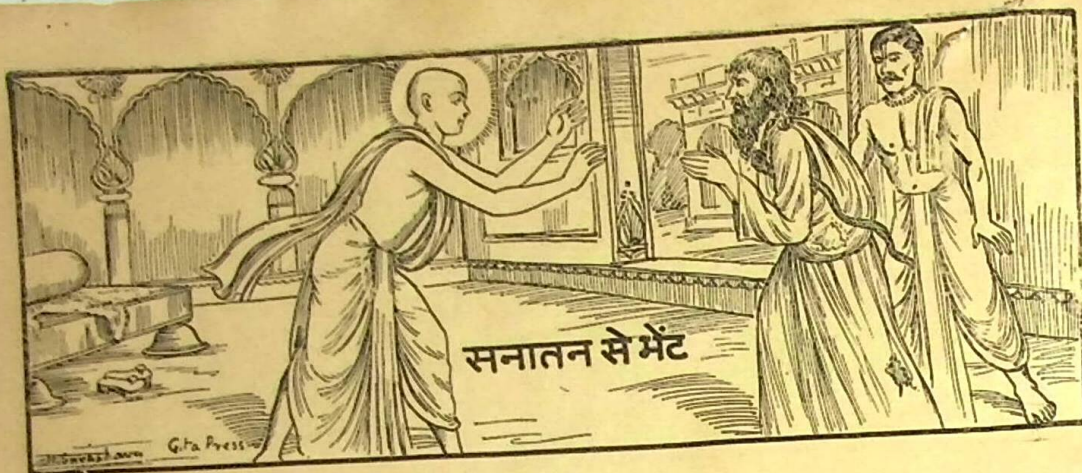
सदा नम्रता वैष्णव-भूषण। हैं फकीर-से बने सनातन॥
परम नम्र संकोच अपार। मिला महाप्रभुका है प्यार॥
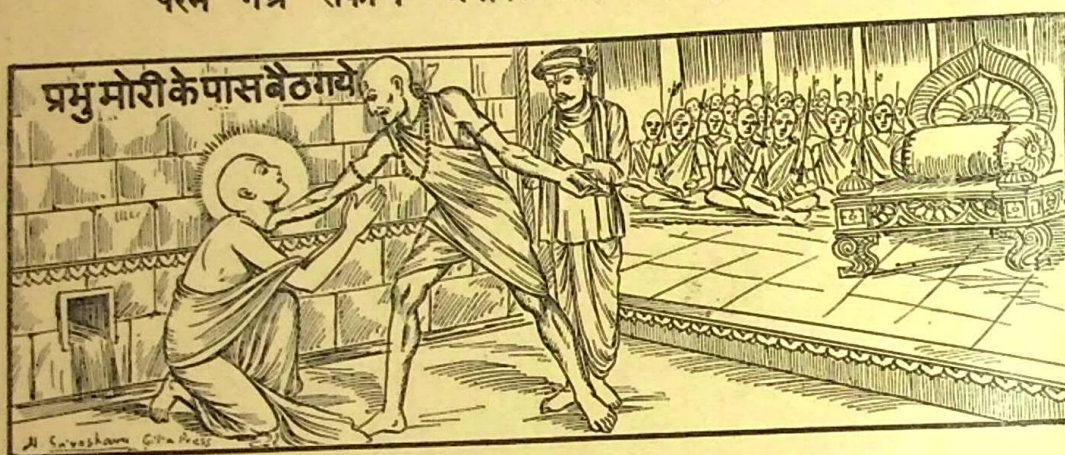
गर्व सदा खाता है गोता। नम्र सब कहीं विजयी होता॥
स्वयं प्रकाशानन्द उठे अब। देख गौर नीचे बैठे तब॥
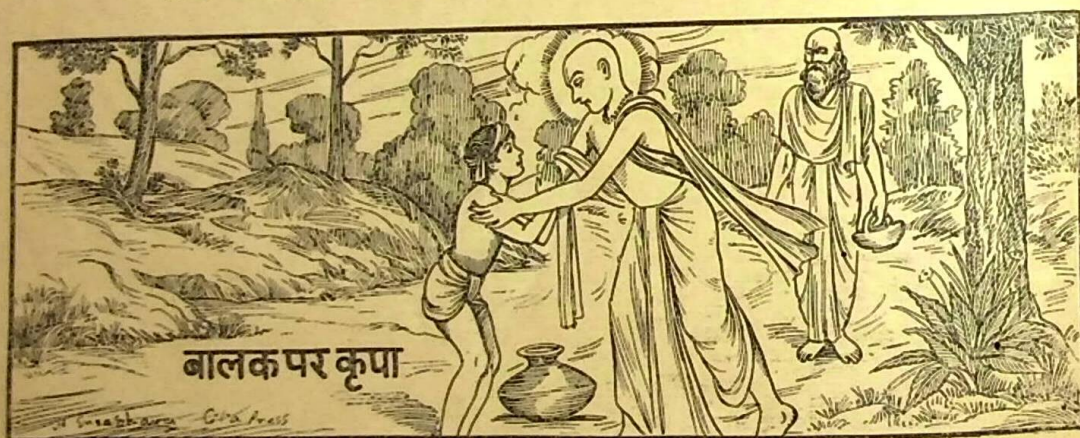
छाँछ माँगकर करके पान। दिया स्वयं आलिंगन दान॥
धन्य हो गया गोपकुमार। मिली इसे हरिभक्ति उदार॥

इस यात्रामें काशीमें ही महाप्रभुसे सनातनजी मिले । सनातनजी फकीरके वेशमें थे । वे अपनेको बहुत दीन, अपवित्र मानते थे । महाप्रभुने उन्हें देखते ही दौड़कर हृदयसे लगा लिया ।

काशीके सर्वश्रेष्ठ विद्वान् स्वामी प्रकाशानन्दजी भगवद्भक्तिका उपहास किया करते थे । उन्होंने स्वयं चैतन्य महाप्रभुके सम्बन्धमें भी कटाक्षपूर्ण पत्र पुरी भेजे थे । काशीमें सभी संन्यासियोंका निमन्त्रण था । भक्तोंके आग्रहसे महाप्रभु भी वहाँ गये और नम्रतासे मोरीके पास बैठ गये । महाप्रभुके अद्भुत तेज तथा नम्रताको देख स्वामी प्रकाशानन्दजी स्वयं गद्दीपरसे उठे और हाथ पकड़कर उन्होंने महाप्रभुको अपने पास बैठाया । फिर तो महाप्रभुके प्रभावसे उनका गर्व भाग गया और वे भगवद्भक्त हो गये ।

इस प्रकार महाप्रभुने अनेक लोगोंको अपने प्रभावसे ही भगवद्भक्तिके पावन मार्गमें लगा दिया । इसी यात्रामें इन्होंने एक गोप-बालकसे माँगकर छाछ (मठा) पिया और उसके बाद उसे अपने हृदयसे लगाया । इनका आलिंगन पाते ही वह बालक प्रेमोन्मत्त होकर 'गोविन्द गोपाल कृष्ण हरि' कहकर नृत्य करने लगा ।

महाप्रभुके पुरी आ जानेपर व्रजसे सनातनजी भी आ गये थे। वे हरिदासजीके साथ ठहरे थे। उनके सारे शरीरमें खुजली-के घाव हो रहे थे। महाप्रभु वहाँ प्रतिदिन जाते थे और सनातन-जीको हृदयसे लगाये बिना मानते नहीं थे। महाप्रभुके शरीरमें घावका पीब लग जानेसे सनातनजीको बड़ा दुःख होता था। एक दिन महाप्रभुने जैसे ही उनका आलिंगन किया कि उनके शरीरके सब घाव अपने-आप अच्छे हो गये।

महाप्रभुको श्रीगोवर्धन-शिला और एक गुञ्जामाला अत्यन्त प्रिय थी। यह उन्हें वृन्दावनसे लाकर एक संन्यासी संतने दी थी। अपनी ये दोनों परम प्रिय वस्तुएँ महाप्रभुने रघुनाथदासके वैराग्यसे संतुष्ट होकर उन्हें दे दीं।

रघुनाथदासका वैराग्य बड़ा अद्भुत था। वे भिक्षातक नहीं माँगते थे। दूकानदार जगन्नाथजीका जो प्रसाद बिकनेसे बच जानेपर फेंक देते और गायें भी जिसे नहीं खाती थीं, वह सड़ा-गला अन्न रघुनाथदास उठा लाते और धो-धोकर उसमेंसे बिना सड़े भातके कण निकालते। बिना नमकके उस अन्नको ही खाकर वे निर्वाह करते थे। उनके त्यागके कारण उनका वह अन्न इतना पवित्र था कि महाप्रभुने एक दिन स्वयं उनके पास जाकर उनके हाय-हाय करते रहनेपर भी वह भात छीनकर खाया।

सनातनके घावभरे देहको भेंटते
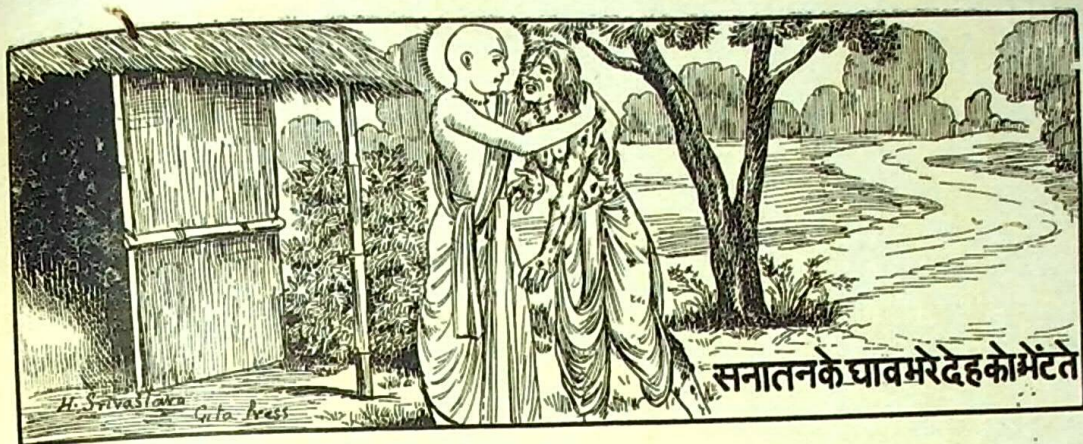
खुजली हुई सनातनके तन। किन्तु गौर करते आलिंगन॥
घृणा कहाँ जब पावन प्यार। पर उनको संकोच अपार॥

रघुनाथदासको गुंजामाला तथा गोवर्धनशिला देते
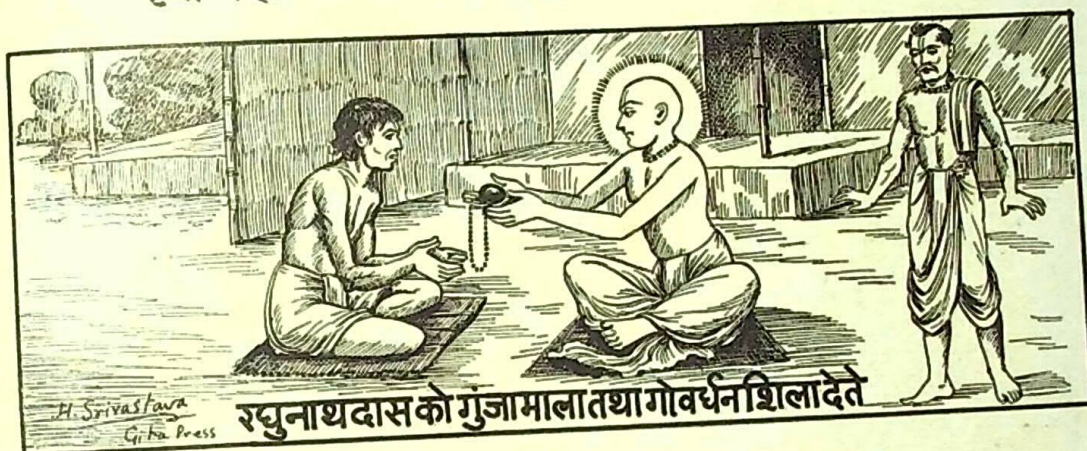
शिला गोवर्धन, गुञ्जा माला। तीन वर्ष धन मान सम्हाला॥
देते वह चैतन्य उदार। है रघुनाथदास पर प्यार॥

रघुनाथदाससे छीनकर प्रसाद खाते
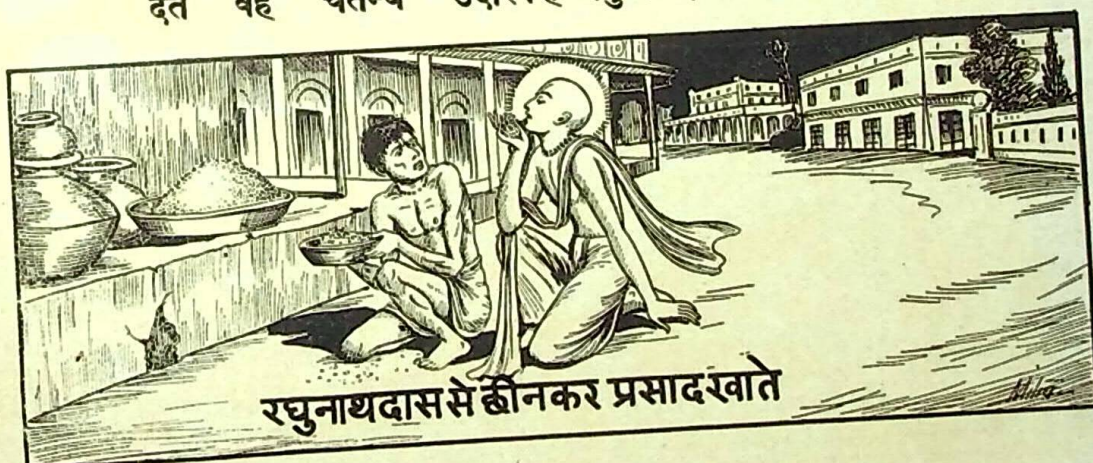
चुन चुन लाते सड़ा प्रसाद। धो खा लेते ध्यान न स्वाद॥
है रघुनाथ त्याग मन भाया। छीन प्रसाद गौरने पाया॥

अंगूठा पीते कर्णपूर

चूस रहे चैतन्य अगूँठा। इनका है सौभाग्य अनूठा॥
इस शिशुतामें भी है भक्ति। कर्णपूरमें कविता शक्ति॥

हरिदासका महाप्रयाण

जीवनभर जपकर हरिनाम। अब जाते हैं हरिके धाम॥
मरण हुआ है इनसे धन्य। धन्य भक्त हरिदास अनन्य॥

हरिदासकेलिये भिक्षा मांगते

श्रीहरिदास-जयोत्सव काज। माँग रहे हैं भिक्षा आज॥
श्रीचैतन्य भावसे विह्वल। इनका स्नेह करे जग निर्मल॥

सबसे धन्य थे शिवानन्द सेनजीके पुत्र पुरीदास या कवि कर्णपूर । इनकी माताने जब इन्हें प्रभुके चरणोंपर रखा तो ये महाप्रभुके चरणोंका अँगूठा मुखमें लेकर चूसने लगे । सात वर्षकी अवस्थामें प्रभुके कहनेपर श्रीकृष्णचन्द्रके वर्णनमें इन्होंने श्लोक बनाकर सुनाया ।

श्रीगौराङ्गके प्रधान भक्तोंमें यवन हरिदासजी थे । वे तीन लाख भगवन्नामका नित्य जप करते थे । महाप्रभुके पुरी आनेपर वे भी पुरी आ गये और नगरसे दूर कुटियामें रहने लगे । महाप्रभु नित्य उनसे मिलने जाते थे । श्रीहरिदासजीके महाप्रयाण-के समय महाप्रभु उनके मस्तकपर हाथ रखे उनके पास ही बैठे थे ।

हरिदासजीकी रथीको स्वयं महाप्रभुने कंधा दिया और उनकी समाधिमें अपने हाथों मिट्टी डाली । इतना ही नहीं, हरिदासजीके भण्डारेके लिये महाप्रभुने स्वयं चद्दर फैलाकर पुरीके दूकानदारोंसे महाप्रसादकी भिक्षा माँगी । हरिदासको ये अपना परम प्रिय बन्धु मानते थे ।

अंगूठा पीते कर्णपूर

चूस रहे चैतन्य अगूँठा। इनका है सौभाग्य अनूठा॥
इस शिशुतामें भी है भक्ति। कर्णपूरमें कविता शक्ति॥

हरिदास का महाप्रयाण

जीवनभर जपकर हरिनाम। अब जाते हैं हरिके धाम॥
मरण हुआ है इनसे धन्य। धन्य भक्त हरिदास अनन्य॥

हरिदासकेलिये भिक्षा मांगते

श्रीहरिदास-जयोत्सव काज। माँग रहे हैं भिक्षा आज॥
श्रीचैतन्य भावसे विह्वल। इनका स्नेह करे जग निर्मल॥

सबसे धन्य थे शिवानन्द सेनजीके पुत्र पुरीदास या कवि कर्णपूर। इनकी माताने जब इन्हें प्रभुके चरणोंपर रखा तो ये महाप्रभुके चरणोंका अँगूठा मुखमें लेकर चूसने लगे। सात वर्षकी अवस्थामें प्रभुके कहनेपर श्रीकृष्णचन्द्रके वर्णनमें इन्होंने श्लोक बनाकर सुनाया।

श्रीगौराङ्गके प्रधान भक्तोंमें यवन हरिदासजी थे। वे तीन लाख भगवन्नामका नित्य जप करते थे। महाप्रभुके पुरी आनेपर वे भी पुरी आ गये और नगरसे दूर कुटियामें रहने लगे। महाप्रभु नित्य उनसे मिलने जाते थे। श्रीहरिदासजीके महाप्रयाण-के समय महाप्रभु उनके मस्तकपर हाथ रखे उनके पास ही बैठे थे।

हरिदासजीकी रथीको स्वयं महाप्रभुने कंधा दिया और उनकी समाधिमें अपने हाथों मिट्टी डाली। इतना ही नहीं, हरिदासजीके भण्डारेके लिये महाप्रभुने स्वयं चद्दर फैलाकर पुरीके दूकानदारोंसे महाप्रसादकी भिक्षा माँगी। हरिदासको ये अपना परम प्रिय बन्धु मानते थे।

भक्तोंकी निष्ठाएँ अद्भुत होती हैं। कालिदासजी भगवद्-भक्तोंकी चरण-रज और उनके सीथ प्रसादके भक्त थे। उन्हें कभी किसी वैष्णवकी चरणरज लेने या प्रसाद लेनेमें झिझक नहीं होती थी। उल्टे वे हठपूर्वक चरण-रज लेकर ही मानते थे। महाप्रभु श्रीजगन्नाथका दर्शन करने जाते तो एक गड्ढेमें पैर धो लिया करते। वहाँ कोई इनका चरणोदक न ले, यह इनकी कड़ी आज्ञा थी। लेकिन कालिदासने इनके सामने ही चरणोदक लिया। महाप्रभु कालिदासकी ओर देखकर हँसकर रह गये।

महाप्रभुके परम भक्त जगदानन्दजीने बड़ा ही गुणकारी तेल ओषधियोंके द्वारा तैयार कराया। घड़ा भर तेल लेकर वे महाप्रभुके पास आये। महाप्रभुने जब तेल लगाना स्वीकार नहीं किया तो जगदानन्दने प्रेमके रोषमें घड़ा वहीं पटककर फोड़ दिया। कई दिनोंतक वे रूठे रहे। महाप्रभुने उन्हें स्नेहसे मनाया।

एक दिन महाप्रभु गरुड़मूर्तिके पास खड़े होकर श्रीजगन्नाथजीके दर्शन कर रहे थे। भीड़ अधिक थी। एक बुढ़िया श्रीजगन्नाथजीका दर्शन करनेकी उमंगमें अनजाने ही महाप्रभुके कंधेपर पैर रखकर खड़ी हो गयी। महाप्रभुने भक्तोंको संकेतसे मना कर दिया कि बुढ़ियासे कोई कुछ न कहे। वे चुपचाप स्वयं श्रीजगन्नाथजीके दर्शन करते खड़े रहे।

कालिदास ने चरणोदक लिया
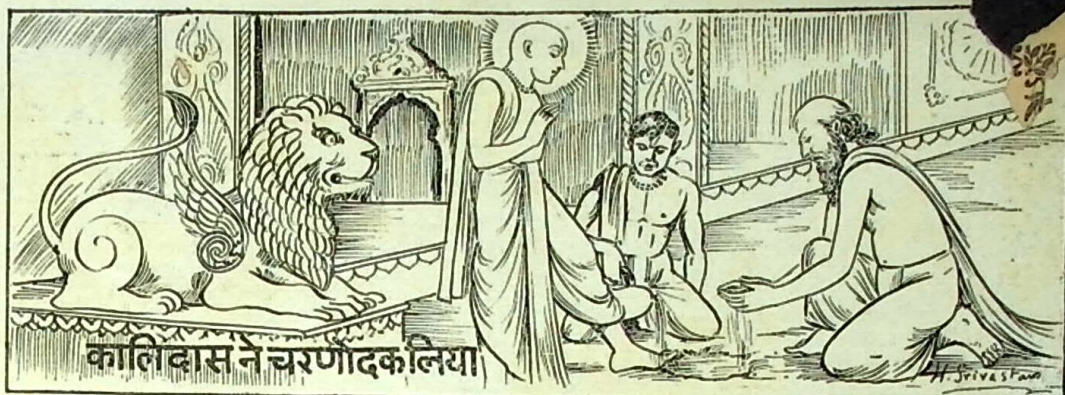
भक्त चरणरजके अनुरागी। कालिदास हैं ये बड़भागी॥
भक्त चरणरज शीश चढ़ाया। इससे गौर चरण जल पाया॥
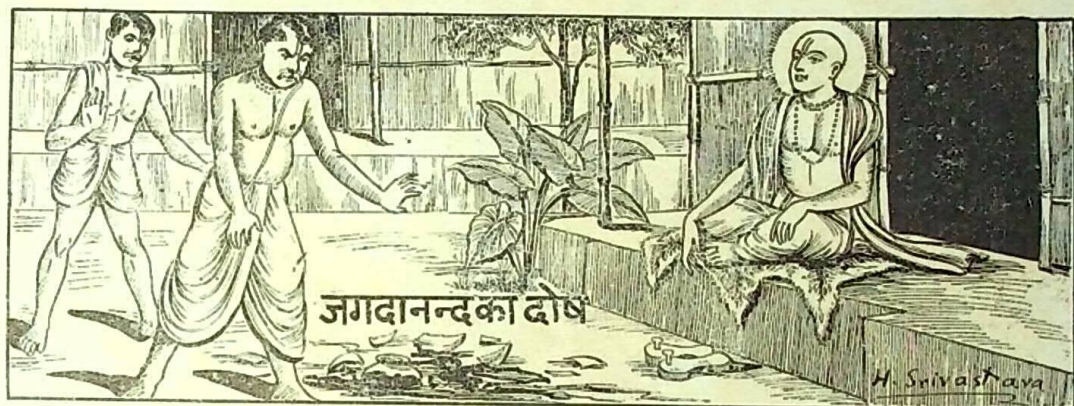
जगदानन्दका दोष

तेल सुगंधित घट भर लाये। श्रीचैतन्य लगा सुख पाये॥
मिली न स्वीकृति घट है पटका। जगदानन्द कोप श्रद्धाका॥

कन्धे पर [illegible] वृद्धा

जगन्नाथ-दर्शनमें भाण। पैर कहाँ यह इसे न ध्यान॥
वृद्धाका लख दर्शन चाव। गौर शान्त उर अनुपम भाव॥
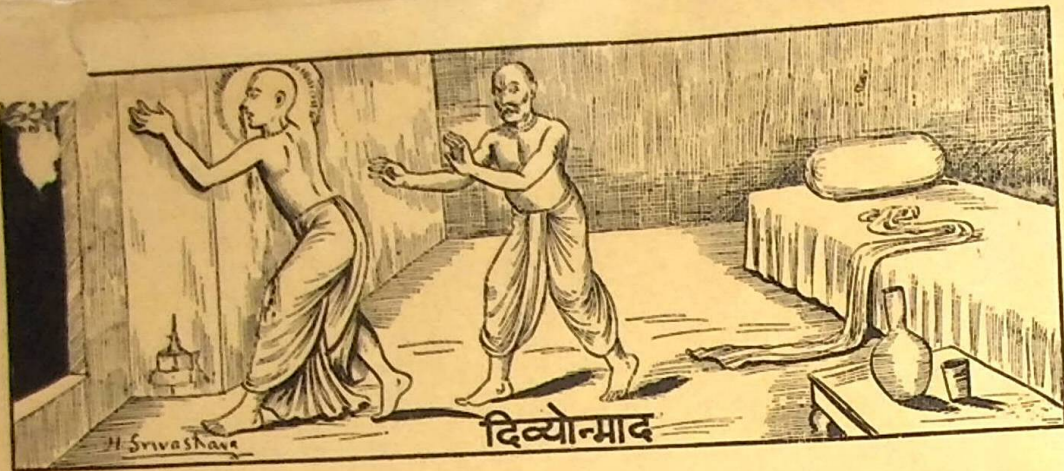
गम्भीरा मन्दिर गौराङ्ग। जगी कृष्णकी विरह-उमंग॥
व्याकुल रोते हा हा खाते। भीतोंमें सिर घिसते जाते॥

भूल गया है तनका भान। जगा हृदयमें प्रेम महान॥
चित्त न है अब अपने वशमें। कूद गये सागरके ज़लमें॥

लखकर हुआ पुजारी दंग। जगन्नाथमें ये गौराङ्ग॥
लीन हो रहे हैं अब आज। हैं इनसे अभिन्न व्रजराज॥

श्रीगौराङ्ग-महाप्रभुने चौबीस वर्षकी अवस्थामें संन्यास लिया था। फिर ये पुरी आ गये थे। संन्यासके बाद छः वर्ष इन्होंने तीर्थयात्राओं-में बिताये । इनकी अन्तिम यात्रा वृन्दावनकी थी । वहाँसे लौटकर ये अठारह वर्ष श्रीजगन्नाथपुरीमें और रहे। जिस स्थान-में ये रहते थे, उसे 'गम्भीरा मन्दिर' कहा जाता है । अन्तिम वर्षोंमें तो महाप्रभु श्रीकृष्ण-विरहकी चरम स्थितिमें रहते थे। ये रात-दिन रोया करते थे। गम्भीरा मन्दिरकी दीवारोंमें मुख घिसने लगते थे और इससे रक्ततक निकलने लगता था।

बार-बार निकलकर 'हा कृष्ण ! हा कृष्ण !' पुकारते हुए भागते थे और कहीं भी गिरकर मूर्छित हो जाते थे। एक बार समुद्रमें कूद पड़े और जलमें मूर्छित हो गये। मछुओंके जालमें इनका देह पड़कर बाहर निकला। हरिनाम सुननेपर इन्हें चेत हुआ। भक्तलोग बड़ी कठिनाईसे इनकी सँभाल करते और बार-बार इन्हें ढूँढ़कर ले आते थे।

अन्तमें एक दिन महाप्रभु श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरमें दौड़ते हुए चले गये। पुजारी हक्का-बक्का देखता रह गया। महाप्रभु श्रीजगन्नाथजीकी मूर्तिमें लीन हो गये।

श्रीहरिः

बालोपयोगी आठ पुस्तकें

मूल्य पैसे